समयसार, गाथा ३२। गाथा का अर्थ चला न? (हाँ), हो गया।

टीका, सूक्ष्म अधिकार है। यहाँ आत्मा ज्ञानानन्द सहजात्म चैतन्यस्वरूप का अनुभव होने पर भी, उसके आनन्द का स्वाद आने पर भी, सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान होने पर भी, अपनी पर्याय में कर्म के निमित्त के लक्ष्य से विकारभाव होता है, उसे यहाँ भाव्य कहते हैं। कर्म भावक, उस भाव को करनेवाला उपचार से; वह भाव्य अपनी पर्याय में धर्मी को भी ज्ञानी को भी, मुनि को भी, आहाहा! अपनी पर्याय में मोह... मोह शब्द से यहाँ

मिथ्यात्व नहीं। अन्दर जो चारित्रमोह है, उसके उदय में अपनी योग्यता से जो भाव्य... उस तरफ अनुसरण करते हैं तो विकारी पर्याय होती है। आहाहा! धर्मी को, ज्ञानी को, आहाहा! उसको जीतना...

टीका : मोहकर्म फल देने की सामर्थ्य से.... कर्म जड़ है, वह सत्ता में पड़ा है। अब उदय में आया। (फल) **देने की सामर्थ्य से प्रगट उदयरूप होकर भावकपने से प्रगट होता है....** यहाँ विकारी पर्याय में भावकपना निमित्तपना होकर प्रगट होता है। **तथापि....** ऐसा होने पर भी, **तदनुसार जिसकी प्रवृत्ति है....** आहाहा! धर्मी जीव की भी, ज्ञानी की, समकिती की, अनुभवी की भी, वह कर्म जो भावक आया, उसके अनुसार जिसकी प्रवृत्ति है। है? अपनी पर्याय में विकार होने की योग्यता है। आहाहा! बालचन्दजी! यह तो दूसरे प्रकार की स्तुति है न? पहली स्तुति तो आनन्दस्वरूप भगवान राग से, परद्रव्य से, भावेन्द्रिय से भिन्न — ऐसा भान हुआ तो वह प्रथम, केवली की अर्थात् केवलज्ञानस्वरूप भगवान की स्तुति कही जाती है। आहाहा!

अब उससे दूसरी स्तुति, उससे विशेष — कि भावक है, कर्म का उदय आया, चारित्रमोह है, भावकपने से प्रगट होता है। कर्म में, कर्म में-जड़ में उदय आया। अब **तथापि...** तो भी **तदनुसार जिसकी प्रवृत्ति है....** उस कर्म के उदय के अनुसार होकर जो भाव्यकर्म की प्रवृत्ति है, आहाहा! **ऐसा जो अपना आत्मा....** आहाहा! विशिष्टता तो यह कही है कि कर्म का उदय आया परन्तु वह कोई विकार कराता है — ऐसा नहीं है। समकिती को और ज्ञानी को अपनी पर्याय तदनुसार प्रवृत्ति करने से जो विकारभाव राग-द्वेष आदि बहुत बोल लेंगे। पहले यहाँ मोह का लिया, फिर सोलह बोल लेंगे। आहाहा! उस कर्म के उदय के अनुसार... यहाँ अनुसार — आश्रय अल्प है परन्तु विशेष लक्ष्य पर के ऊपर गया। आहाहा! वह **तदनुसार जिसकी....** आत्मा की **प्रवृत्ति है - ऐसा जो अपना आत्मा....** आहाहा! **भाव्य, उसको भेदज्ञान के बल द्वारा....** आहाहा! वह विकारी पर्याय जो अपने में सम्यग्दर्शन-ज्ञान आनन्द होने पर भी, पुरुषार्थ की कमी से... आहाहा! भावक जो कर्म का उदय आया, उसके अनुसार जो प्रवृत्ति थी, उसको छोड़ देते हैं। आहाहा! अपने उल्टे पुरुषार्थ से कर्म के उदय के अनुसार जो विकार-भाव्य होता था।

'भाव्य' अर्थात् विकारी दशा होने के योग्य — **उसको भेदज्ञान के बल द्वारा....** एकत्वबुद्धि तो छूट गयी है और सम्यग्दर्शन ज्ञान है परन्तु उसके साथ जो सम्बन्ध है, उसे भेदज्ञान के बल से वह सम्बन्ध छोड़ देते हैं। आहाहा! और स्वभाव के साथ विशेष सम्बन्ध करते हैं। ऐसी बातें कठिन भाई! समझ में आया?

अपना आत्मा आनन्दस्वरूप भगवान है, वह चैतन्य ज्योति (है), उसकी दृष्टि और अनुभव हो, फिर भी अभी कमजोरी-पुरुषार्थ की कमी है। आहाहा! ज्ञानी को भी चौथे गुणस्थान में, पाँचवें गुणस्थान में रौद्रध्यान होता है। क्या कहा? आहाहा! समकिती ज्ञानी अनुभवी को भी कमजोरी से आर्तध्यान और रौद्रध्यान दोनों होते हैं, चौथे, पाँचवें (गुणस्थान में)। आहाहा! और छठवें गुणस्थान में मुनि को आर्तध्यान होता है, रौद्रध्यान नहीं, क्योंकि अन्तर में इतनी एकाग्रता का अभाव तो परतरफ की एकाग्रता का रौद्रध्यान, आर्तध्यान, मोहभाव उत्पन्न होता है। आहाहा! समझ में आया? उस कर्म के निमित्त का अनुसरण करके जो भाव्य, अर्थात् विकारदशा-मोह हुई, उसका अनुसरण छोड़कर, स्वभाव का विशेष अनुसरण करने से भाव्यकर्म का उपशम किया। समझ में आया? बहुत सूक्ष्म बापू! मार्ग बहुत सूक्ष्म है! यह सर्वज्ञ भगवान के अतिरिक्त (कहीं नहीं है)। आहाहा! यहाँ तो समय-समय का लेखा है। सुमेरुमलजी! गाथा बड़ी अच्छी आ गयी। आहाहा! भगवान त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेव ऐसा कहते हैं कि आहाहा! जिसको ज्ञाता-दृष्टा स्वभाव भगवान आत्मा का अनुसरण करके भान हो गया — सम्यग्दर्शन हो गया... सम्यग्ज्ञान हुआ और स्वरूप में अल्पस्थिरता-आचरण भी हो गया। आहाहा! उस जीव को अभी तक कर्म के उदय के अनुसार मोह, अर्थात् भाव्य-विकारदशा होती है, उस सम्बन्ध को तोड़ देता है। उस उदय के साथ सम्बन्ध करता है तो भाव्य होता है। पहले में संकरदोष था। संकर का अर्थ? राग और मैं एक हूँ — ऐसी मान्यता मिथ्यात्व का संकरदोष था। आहाहा! वह शंकर (अन्यमत में माने जानेवाले) नहीं, हों! आहाहा! भगवान आत्मा ज्ञान और आनन्द प्रभु है, उसमें शुभराग या अशुभराग, वह राग की एकत्वबुद्धि है, वहाँ तक तो मिथ्यात्व है। वह एकत्वबुद्धिरूप संकरदोष उत्पन्न होता है। आहाहा! यह भगवान आत्मा अपनी जाति की सम्हाल में जाता है, तब राग की एकतारूपी संकरदोष नाश होता है। आहाहा!

दूसरे प्रकार से कहें तो शंकरस्वरूप, भगवान शिवस्वरूप प्रभु है। भगवान आत्मा शिव-शंकर; शंकर अर्थात् शिव - शिव, अर्थात् महादेव। यह महादेवस्वरूप है। इसे राग के साथ एकता वह संकर नाम का दोष है, शंकर नाम का स्वभाव भगवान का शिवस्वरूप — निरुपद्रव आनन्द का नाथ, उसमें... आहाहा! वह सुखस्वरूप है, वह शंकरस्वरूप है- शंकरस्वरूप है। शंकर, अर्थात् यह शंकर नहीं; शिवस्वरूप है। उस भगवान शिवस्वरूप में राग की एकता मानना, वह संकर अर्थात् विरुद्ध है। जो सुखरूप दशा शंकरस्वभाव से विरुद्ध संकरदोष... आहाहा! अरेरे! उस दोष को निकाल दिया। सम्यग्दर्शन हुआ तो यह इतनी आत्मा की स्तुति की। जो राग की स्तुति करता था, उसे छोड़कर भगवान पूर्णानन्द की स्तुति-अन्दर एकाकार हुआ तो यह निश्चयस्तुति हुई।

आहाहा! ऐसी बातें हैं बापू! इसमें जरा मस्तिष्क फैलाना पड़े ऐसा है। आहाहा! समझ में आया? आटा बनाती हैं न बहिनें, आटा? तो उसको भी फैलाती हैं तो रोटी होती है, ऐसे के ऐसे रोटी नहीं होती। आहाहा! आटा में पानी डालकर फिर फैलाते हैं तो रोटी होती है, फैलाये बिना रोटी नहीं होती, आहाहा! वैसे ही भगवान को ज्ञान में सीख देना चाहिए। आहाहा! ऐसा केवलज्ञान प्रभु भगवान, ऐसे केवलज्ञान स्तुति की, अनुभव हुआ परन्तु अभी तक अभी कर्म के उदय की ओर का अनुसरण जो राग-मोह होना, वह नहीं गया... आहाहा! तो यह कर्म के उदय के अनुसार होनेवाला विकार, उसे अपना अनुसरण करके विकार को उपशम-दबा देना, यह दूसरे प्रकार की स्तुति है। समझ में आया? अब ऐसी बातें! बनियों को धन्धे के कारण फुर्सत नहीं मिलती, व्यापार... क्यों रतनलालजी! यह धन्धा... आहाहा!

यह भाव्य — **उसको भेदज्ञान के बल....** अर्थात् उस ओर के अनुसरण को छोड़कर — पर का सम्बन्ध छोड़कर, अपना विशेष सम्बन्ध कर लेना, यह भाव्य का नाश नहीं किया, किन्तु दबा दिया, उपशम किया। आहाहा! यह उपशमश्रेणी की बात है। **भेदज्ञान के बल द्वारा....** अर्थात् पर के सम्बन्ध को छोड़कर, अपने सम्बन्ध में विशेष लेकर वह भेदज्ञान हुआ। भेदज्ञान — सम्यग्दर्शन तो है परन्तु राग का सम्बन्ध था, कर्म का — निमित्त का ऐसा सम्बन्ध था, उसको भेदज्ञान — अपना अनुसरण करके, राग से

भिन्न करके राग को दबा दिया। आहाहा! इसमें कितना याद रखना? ऐसा मार्ग, दुनिया कहीं का कहीं मानती है! अरे... आहाहा! क्या शैली! समयसार!

दो बात - कर्म का उदय आया तो विकार करना पड़े — ऐसा नहीं है। उदय की ओर का झुकाव हो तो विकार होता है। आहाहा! यह पर के झुकाव का सम्बन्ध, उस संकर में (गाथा ३१ में) एकत्वबुद्धि का सम्बन्ध था, इसमें (गाथा ३२ में) अस्थिरता का सम्बन्ध है। यह अस्थिरता का — कर्म के निमित्त का जो सम्बन्ध था, उसको छोड़कर स्वभाव की ओर आया तो यह दूसरी स्तुति — शुद्धता की वृद्धि हुई, यह दूसरी स्तुति है। आहाहा! छोटूभाई गये या हैं? (है) है। ऐसा मार्ग है, कलकत्ता नहीं? छोटूभाई। शान्तिभाई और छोटूभाई! आहाहा! इन्हें बहुत रुचता है। आहाहा! प्रभु इसमें किसी का पक्ष नहीं, आहाहा! अपने स्वभाव का जो विशेष अनुसरण होना चाहिए, वह न करके, कर्म के निमित्त का अनुसरण की दशा करे तो वह दोष है। 'राग' — बहुत बोल लेंगे, यहाँ पहले मोह लिया है, अस्थिरता का। उसको अपने पुरुषार्थ से भिन्न करके, अपने स्वभाव का विशेष अनुसरण करके, राग का भाव उत्पन्न नहीं हुआ, दबा दिया, वह दूसरे प्रकार की समकित की स्तुति है। समकिती को दूसरे प्रकार की स्तुति कही गयी है, अरे! बापू! मार्ग ऐसा अलौकिक है।

भेदज्ञान के बल द्वारा दूर से ही अलग करने से.... यह क्या कहा? दूर से अर्थात्? कर्म के उदय का सम्बन्ध किये बिना दूर से वह छूट गया। कर्म के उदय का सम्बन्ध किये बिना छूट गया। आहाहा! अन्दर में झुक गया। समकिती, ज्ञानी, सन्त आत्मज्ञानी धर्मात्मा... आहाहा! इतना अभी कर्म के उदय का निमित्त में अनुसरण अपनी योग्यता से करते थे, उस अनुसरण को दबा दिया। अपने अनुसरण में वह विशेष आ गया। समझ में आया? ऐसी भाषा चाहे जैसी सादी परन्तु भाव तो जो हो वह (कहा जायेगा न?) आहाहा! **दूर से ही अलग करने से....** अर्थात्? कि उत्पन्न हुआ और बाद में राग दबा दिया — ऐसा नहीं। उत्पन्न हुआ ही नहीं। आहाहा! अपने शुद्धस्वभाव का भान — सम्यग्दर्शन, ज्ञान तो है परन्तु स्वभाव का विशेष आश्रय लेकर (एकाग्रता से) उस उदय के राग को दबा दिया, उपशम कर दिया। समझ में आया? ऐसा मार्ग है बापू! वीतराग

परमेश्वर जिनेश्वरदेव का पन्थ यह है। यह तो वस्तु का पन्थ है। यह जैन कोई पक्ष नहीं, आहाहा! जिनस्वरूपी भगवान का अनुसरण करके पहले राग की एकता तोड़ दी और भगवान आत्मा की प्रशंसा, अर्थात् स्तुति, अर्थात् स्वीकार और सत्कार हुआ — यही भगवान की स्तुति है। आहाहा! राग ठीक है, यह विकार की स्तुति है; भगवान आत्मा ठीक आनन्दकन्द है — ऐसी दृष्टि का विषय पकड़ा तो पहली स्तुति हुई।

दूसरी स्तुति अपनी पर्याय में कमजोरी से निमित्त का अनुसरण करती राग की पर्याय, आहाहा! वह तो दूर से हटाकर — निमित्त का अनुसरण छोड़कर, भगवान आत्मा का विशेष अनुसरण करके राग को दबा दिया। अभी क्षय नहीं हुआ। जैसे, पानी में मैल,... मैल होता है न, दब जाता है न? बाहर नहीं निकाल दिया। आहाहा! ऐसी शैली ली है।

इस प्रकार बलपूर्वक.... अपने स्वभाव का अनुसरण करनेवाला बलपूर्वक, आहाहा! जोरदार आत्मा की ओर का बलपूर्वक पुरुषार्थ करके। समकिती को-अनुभवी को, ज्ञानी को.... आहाहा! **इस प्रकार बलपूर्वक मोह का तिरस्कार करके,....** पर तरफ की सावधानी के भाव को उत्पन्न नहीं होने देना, यह मोह का तिरस्कार किया; भगवान का स्वीकार विशेष किया, राग का तिरस्कार किया। आहाहा!

मोह का तिरस्कार करके, समस्त भाव्यभावक-संकरदोष दूर हो जाने से.... लो, ठीक! क्या? भावक जो कर्म का उदय, उसके अनुसरण से होनेवाला विकारी मोहभाव, इन दोनों का सम्बन्ध दूर हो जाने से-दोनों का सम्बन्ध दूर हो जाने से, आहाहा! और स्वभाव-भगवान आत्मा की ओर का जोर से आश्रय करके... आहाहा! अरे बापू! तेरा मार्ग कोई अलौकिक है। प्रभु! तू भगवानस्वरूप है न? आहाहा! भगवानरूप से भगवान को जाना, तथापि पर्याय में अभी कमजोरी है। ज्ञानी (को भी) पंचम गुणस्थान में रौद्रध्यान होता है। आर्तध्यान, रौद्रध्यान, धर्मध्यान, शुक्लध्यान — यह ध्यान के चार प्रकार (है।) उसमें समकिती को भी... आहाहा!

श्रेणिक राजा के लड़के ने अपना राज्य करने को (उन्हें) कैद में डाल दिया। क्षायिक समकिती, तीर्थंकर गोत्र बाँधते हैं, भविष्य में-आगामी चौबीसी में तीर्थंकर होनेवाले हैं परन्तु जहाँ वह बालक, उनका लड़का, उनको कैद में डालकर उसकी माता

के पास चरण छूने को गया (कि) माता! आज मैंने ऐसा किया। अरेरे..! पुत्र तेरे जन्म के समय मुझे पहले स्वप्न आता था कि मैं श्रेणिक का कलेजा खाऊँ। पुत्र मेरे अन्दर ऐसा आता था। इस कारण तेरा जन्म हुआ तो मैंने (तुझे) फैंक दिया, बालक को (तुझे) कचरे में डाल दिया, कचरे का ढेर (में डाल दिया) और तेरे पिताजी आये। क्या हुआ? बालक कहाँ गया? मैंने तो कचरे के ढेर में डाल दिया। अरर! वे श्रेणिक एकदम गये और कचरे के ढेर में कूकड़ा होता है न कूकड़ा! चोंच मारकर और पीड़ा... श्रेणिक राजा गये और उठा लिया और चूस लिया और आकर रानी को सौंप दिया। अरे भाई! तेरे पिताजी ने ऐसा किया, तुमने यह क्या किया? माता मैंने बहुत अपराध किया। मैं जेल में छुड़ाने को जाता हूँ। हाथ में हथियार है। राजा को ऐसा लगता है कि मुझे मारने को आता है। आहाहा! है समकिती, क्षायिक समकिती। एकदम हीरा चूस लिया और देह छूट गयी। आहाहा! बाद में अरेरे! मेरे पिताजी को यह क्या हुआ... क्या करूँ.... मैं क्या करूँ! इस प्रकार ज्ञानी को भी ऐसा आत्मघात करने का भाव आया तो भी यह समकित का दोष नहीं है, वह चारित्र का दोष है। समझ में आया? आहाहा! समकित तो निर्मलानन्द, वह समकित केवलज्ञान लेगा।

ऐसी चीज है प्रभु! उसे भी यह मरने का भाव आ गया, तथापि वह दोष चारित्र का है। वह कर्म के निमित्त के अनुसर कर भाव हो गया, अपना अपराध अपने से हो गया। समझ में आया? फिर भी सम्यग्ज्ञान और सम्यग्दर्शन में किंचित् दोष नहीं है। आहाहा! यह बात! बालचन्दजी! सुना है या नहीं श्रेणिक महाराज का? ऐसा यहाँ कहते हैं कि यह भगवान आत्मा अनन्त गुण-रत्नाकर की (खान), माला, आहाहा! उसका अन्तर में भान-सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान हुआ, तो भी पर्याय में कमजोरी से कर्म के उदय के अनुसार विकार अर्थात् भाव्य होने की अपनी पर्याय में योग्यता है, उस योग्यता को छोड़ दे। आहाहा! अब ऐसी बातें! इसमें एकेन्द्रिय की दया पालो और धर्म हो, अब इसे कहाँ? दया वह सुख की बेलड़ी, दया वह सुख की खान अनन्त जीव मुक्ति गये दया.... दया यह, वह दया नहीं। बापू! आहाहा!

पर की दया का भाव राग है। उसमें स्वरूप की हिंसा होती है। समझ में आया?

धर्मी को भी राग तो आता है तो इतनी स्वरूप की हिंसा है। आहाहा! स्वरूप का ज्ञान-भान है, फिर भी स्वरूप को राग का आघात लगाता है। ओहोहो! इस दोष को-**संकरदोष दूर हो जाने से एकत्व में टंकोत्कीर्ण....** राग की योग्यता से उत्पन्न था, उस ओर का सम्बन्ध छोड़कर, स्वभाव के सम्बन्ध में एकत्व हुआ; जो राग का द्वैत होता था, उसे छोड़कर स्वभाव में एकत्व हुआ। समझ में आया? भाषा तो सरल है परन्तु भाव तो भाई बहुत सूक्ष्म है! आहाहा! भगवान सूक्ष्म अरूपी आनन्दकन्द का नाथ, आहाहा! यह शुभराग-दया, दान, व्रत का (राग) भी स्थूल राग है। भगवान तो उससे भिन्न है। आहाहा! फिर भी जब तक ज्ञानी को (पूर्ण) वीतरागता न हो, तब तक कर्म के निमित्त के अनुसार विकार होता है। विकार कहो, दु:ख कहो, आहाहा! वह विकार का भाव्य, स्वभाव का इतना सम्बन्ध विशेष करके, पर का सम्बन्ध छूट गया।

उस स्वभाव में इतना एकाग्र हुआ, वह दूसरी स्तुति हुई। आहाहा! ऐसा मार्ग अब! यह साधारण प्राणी को.... सत् होगा तो शरण रहेगा, नहीं तो नहीं रहेगा प्रभु! आहाहा! आहाहा!

एकत्व में टंकोत्कीर्ण.... क्या कहते हैं? अपने में राग की योग्यता, अपने पुरुषार्थ की कमी से निमित्त के अनुसरण से विकारदशा होती थी, उसको छोड़कर, जो राग का द्वैतपना उत्पन्न होना.... स्वभाव की दृष्टि होने पर भी, द्वैतपना-राग का द्वैत उत्पन्न होता था, उसको छोड़कर एकत्व हुआ। आहाहा! ऐसा मार्ग है प्रभु! लोग सोनगढ़ के नाम से विरोध करते हैं, बेचारों को पता नहीं, क्या करें! आहाहा! **एकत्व में टंकोत्कीर्ण....** यह तो मन्त्र है प्रभु! यह तो जहर उतारने के मन्त्र हैं। मिथ्यात्व का जहर और अस्थिरता का जहर। आहाहा! आहाहा! ज्ञानी को भी शुभभाव (आता है), मुनि को भी पंच महाव्रत का (शुभभाव) आता है परन्तु है जहर, है विषकुम्भ। आहाहा! तो राग क्यों आता है? उसे कमजोरी से राग आये बिना नहीं रहता। जब तक वीतराग न हो,... आहाहा! आता है परन्तु उसको अब विशेष सम्बन्ध पर का था, यहाँ सम्बन्ध तो किया है परन्तु विशेष सम्बन्ध किया, वह सम्बन्ध छोड़ दिया। इसमें मस्तिष्क फैलाना पड़ता है। भगवान तीन लोक का नाथ केवलज्ञान का पिण्ड प्रभु का भान होने पर भी, पर्याय में कमजोरी के कारण निमित्त के अनुसरण से विकार-मोह होता था, वह 'भाव्य' (था), वह सम्बन्ध छोड़ दिया;

इतना स्वभाव का सम्बन्ध करके राग को दबा दिया, उपशम कर दिया। समझ में आया?

(समस्त भाव्यभावक-संकरदोष दूर हो जाने से) ज्ञानस्वभाव के द्वारा.... देखो! भगवान चैतन्यस्वभाव, सर्वज्ञस्वभाव, उस सर्वज्ञस्वभाव के द्वारा **अन्य द्रव्यों के स्वभावों से होनेवाले सर्व अन्यभावों से परमार्थतः....** है न? **भिन्न अपने आत्मा को जो (मुनि) अनुभव करते हैं....** आहाहा! सम्यग्दर्शन के उपरान्त, राग को छोड़कर स्वभाव का सम्बन्ध करके अनुभव करते हैं। आहाहा! **वे निश्चय से जितमोह....** है। मोह को जीता; अभी मोह का नाश नहीं किया। उपशमश्रेणी ली है। मोह को जीता है। गाथा तो बहुत अच्छी आ गयी है। आहाहा!

एक बार मध्यस्थता से सुने तो सही! बापू! यह वस्तु-आत्मा का अनुभव और सम्यग्ज्ञान होने पर भी, जब पूर्ण वीतरागता पर्याय में नहीं है, तब तक राग आये बिना नहीं रहता; पर के अनुसरण से विकार भाव्य-भावक भाव होता है परन्तु अब यहाँ तो कहते हैं कि स्वभाव का विशेष सम्बन्ध करके पर के सम्बन्ध को दबा दिया। आहाहा! ऐसा मार्ग अब! अब यह साधारण लोगों को पकड़ना...

श्रोता : कभी आप कहते हो रास्ता सुगम है, कभी आप कहते हो साधारण लोग नहीं पकड़ सकते...

पूज्य गुरुदेवश्री : सुगम है परन्तु उसका प्रयत्न नहीं न! और प्रयत्न करे तो सुगम है। है उसकी प्राप्ति है — प्राप्त की प्राप्ति है परन्तु अभ्यास नहीं न, और अन्दर दूसरी विपरीत मान्यताएँ घुस गयी हों, इसलिए इसे दुर्लभ कहा जाता है। आहाहा!

शास्त्र में तो ऐसा कहा — लक्ष्मी आदि मिलना, वह दुर्लभ है। क्यों? कि उसमें कर्म हो तो मिले और आत्मा का धर्म सुलभ है क्योंकि उसमें पर की कोई अपेक्षा नहीं है। आहाहा! एक ओर दुर्लभबोधि कहा और एक ओर ऐसा कहा। प्रभु! यह लक्ष्मी, अनुकूलता मिलना, वह दुर्लभ है, क्योंकि तेरे पुरुषार्थ से नहीं मिलती; वह तो पूर्व का प्रारब्ध हो तो उसके आश्रय से मिलती है, तो वह वस्तु तेरे पुरुषार्थ से नहीं मिलती; इसलिए दुर्लभ है, और तेरी चीज है, वह तेरे पुरुषार्थ से मिलती है; इसलिए सुलभ है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा भी शास्त्र में कथन है। समझ में आया?

यह धर्मात्मा मुनि... यहाँ आगे ले गये न! सम्यग्दर्शन उपरान्त अन्दर में विशेष स्थिरता हुई है। **वे निश्चय से जितमोह (जिसने मोह को जीता है) जिन हैं।....** जिन तो-दृष्टि में तो अनुभव हुआ तो जिन हुआ, पर्याय से, परन्तु इस विशेष राग का अभाव करके स्थिर हुआ तो 'जितमोह जिन' हुआ। आहाहा! समझ में आया? **कैसा है वह ज्ञानस्वभाव ?....** भगवान ज्ञानस्वभाव **समस्त लोक के ऊपर तिरता हुआ,....** राग आदि सबको जानता होने पर भी, रागरूप नहीं होकर, राग से भिन्न करता है। आहाहा! कैसा है भगवान आत्मा का स्वभाव? कि **समस्त लोक के ऊपर तिरता हुआ,....** सारे जगत का-रागादि सब कोई वस्तु, उससे अपना आत्मा ज्ञायकस्वभाव **तिरता हुआ,....** भिन्न रहता हुआ। आहाहा!

प्रत्यक्ष उद्योतरूप से.... अन्दर भगवान तो प्रत्यक्ष है। आहाहा! पहले प्रत्यक्ष तो मति-श्रुतज्ञान में था परन्तु यहाँ पर राग का सम्बन्ध छोड़कर विशेष स्थिरता आयी तो विशेष प्रत्यक्ष हुआ। आहाहा! अब ऐसा उपदेश! आहा! अब इस एक गाथा में...

श्रोता : भाव कितने सूक्ष्म?

पूज्य गुरुदेवश्री : बापू! मार्ग बहुत सूक्ष्म भाई! आहाहा! शास्त्र का ज्ञान हो गया, इसलिए ज्ञान हुआ — ऐसी चीज नहीं है। भगवान ज्ञानस्वभाव प्रभु का ज्ञान, उसकी दृष्टि और उसमें लीनता प्रगट हुई — यह पहली स्तुति; और विशेष-राग पर्याय में अपनी योग्यता से था, उसे दबा दिया, इतना सम्बन्ध छोड़ दिया, यह दूसरी स्तुति। यह पढ़ना भी कठिन पड़े — ऐसा है। सुमेरुमलजी! आहाहा! भगवान ज्ञानस्वभाव, राग की योग्यता से भाव्य-विकार होता था, उसका-निमित्त की ओर का सम्बन्ध छोड़कर अन्तर स्वभाव की दृष्टि तो है परन्तु स्वभाव में विशेष एकता हुई तो पर से तिरता-भिन्न रहता है-आत्मा रहता है। आहाहा!

सदा अन्तरंग में प्रकाशमान,.... चैतन्य ज्योति जलहल ज्योति चैतन्य प्रकाश का नूर, चैतन्य के नूर का पूर का तेज। आहाहा! अरे! बात सुनने मिलना कठिन पड़ता है। आहाहा! क्या स्तुति की स्थिति! आहाहा! अन्तरंग में सदा प्रकाशमान भगवान तो विराजमान हैं। आहाहा! चैतन्यस्वभाव का-प्रकाश का पूर अन्दर बहता है, यह ध्रुव।आहाहा!

अविनाशी, अपने से ही सिद्ध.... पहले स्वयंसिद्ध आया था न? अपने से ही सिद्ध है; किसी पर के कारण से है नहीं। यह आत्मा और आत्मा का अनुभव अपने से सिद्ध हुआ है; किसी कर्म का अभाव हुआ और यह सिद्ध हुआ — ऐसा है नहीं। समझ में आया? आहाहा!

और परमार्थरूप ऐसा भगवान ज्ञानस्वभाव है। चैतन्यसूर्य, चैतन्यचन्द्र शीतलता से भरा भगवान — ऐसा ज्ञानस्वभाव भगवान है। आहाहा! शान्ति से सुने तो समझ में आये ऐसा है। इसके ख्याल में तो ऐसी बात आनी चाहिए न? आहा! इसके घर की बात है न प्रभु! आहाहा!

श्रोता : स्वयं की है।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसके घर का क्यों नहीं समझ में आयेगा? पहले इसके ख्याल में तो आना चाहिए। आहाहा!

इस प्रकार भाव्यभावक भाव के.... क्या कहा? भाव्यभावक भाव,.... भावक जो कर्म, उसको अनुसरकर होनेवाला विकारीभाव ऐसा भाव; भाव्यभावक भाव, आहाहा! **इस प्रकार भाव्यभावक भाव के संकरदोष को....** दो के सम्बन्ध को; एकत्व को नहीं। आहाहा! **दूर करके दूसरी निश्चयस्तुति हुई।** आहाहा!

इस गाथासूत्र में एक मोह का ही नाम लिया है; उसमें 'मोह' पद को बदलकर.... उसके स्थान पर.... राग लेना, कर्म के उदय के अनुसार ज्ञानी को भी जो राग-भाव्य था, उसको स्वभाव का सम्बन्ध करके राग का सम्बन्ध पर के साथ (का सम्बन्ध) छोड़ दिया। आहाहा! राग था, कर्म के — भावक के अनुसार अपनी पर्याय में राग था। आहाहा! वह राग, पर के सम्बन्ध से था, उसे छोड़ दिया और अपने स्वभाव में इतना आ गया। आहाहा! अस्थिरता का राग भी छूट गया और अन्दर इतना स्थिर हो गया। आहाहा! अरे! यह वाणी कहाँ प्रभु! तीन लोक के नाथ की अमृत वाणी है!

राग, द्वेष,.... लेना। द्वेष भी ज्ञानी को उत्पन्न होता है। कर्म का उदय भावक, द्वेष भाव्य। आहाहा! वह द्वेष-भाव्य, उसको भी छोड़कर... राग, द्वेष आता है। अरे! सत् का स्थापन करना, यह भी छद्मस्थ को एक विकल्प है। असत्य को झूठा सिद्ध करना, यह भी एक द्वेष का विकल्प (है)। भगवान तो ज्ञानस्वरूप है और उसमें यह स्थापन करना,

विकल्प कहाँ है उसमें ? आहाहा ! सर्वज्ञ की बात दूसरी परन्तु छद्मस्थ को.... वह आता है, पीछे कर्ताकर्म में पीछे है कि यह स्थापन करना यह ऐसा है, वहाँ विकल्प है, राग है, और यह नहीं, इतना द्वेष का अंश है। द्वेष का अंश निमित्त का अनुसरण करके होता था। ज्ञानी को, समकिती को, आहाहा ! वह सम्बन्ध छोड़कर स्वभाव का विशेष अनुसरण करना, यह दूसरी स्तुति हुई। आहा !

क्रोध... अब इस द्वेष के दो भाग — क्रोध और मान (हैं)। जरा क्रोध भी आ जाता है, कर्म का भावक-वस्तु-निमित्त-जड़, उसके अनुसरणयोग्य जो भाव — अपना भाव्य वह क्रोधदशा उत्पन्न हुई। आहाहा ! उसको भी अपने स्वभाव का विशेष सम्बन्ध करके, निमित्त के सम्बन्ध में जो क्रोध उत्पन्न था, उसको दबा दिया। आहाहा ! तो यह सब भाव था, समकित और आत्मज्ञान होने पर भी, आहाहा ! यह भाव था। इस भाव की ओर का अनुसरण छोड़ करके, इस ओर का (स्वभाव का) अनुसरण करके क्रोध को दबा दिया। यह दूसरी स्तुति का भेद है। आहाहा ! सर्वज्ञ परमेश्वर के सिवाय यह कहीं है नहीं। समय-समय के दोष की व्याख्या बतलाते हैं। समझ में आया ?

मान... मान भी जरा आ जाता है। दृष्टि का विषय निर्मल है, उसमें... परन्तु अस्थिरता का जरा (मान आ जाता है)। नेमिनाथ भगवान सभा में विराजमान थे, सभा में यादव के सभी योद्धा बैठे हुए थे, तो लोग महिमा करते-करते कोई कहता था — भीम का बल और कोई कहता अर्जुन का बल। ऐसी बात करते-करते.... भगवान तो बैठे थे। गृहस्थाश्रम में थे न ! तब किसी ने ऐसा कहा भाई ! यह भगवान हैं, इनका बल कितना ! शरीर का कितना बल ! उनके आत्मा का... वहाँ भगवान ने पैर नीचे रखा। कृष्ण उस पैर को हिलाने लगे, पैर हिला नहीं। आहाहा ! तीर्थंकर !

श्रोता : थोड़ा मान आया....

पूज्य गुरुदेवश्री : जरा मान आया, अस्थिरता का आया। तीन ज्ञान के धनी, उसी भव में मोक्ष जानेवाले... आहाहा ! ऐसा विकल्प आता है, तो उसको स्वभाव का अनुसरण करके दबा देना; प्रगट नहीं होने देना (यह दूसरी स्तुति हुई)।

माया,.... यह क्रोध और मान, द्वेष के दो भाग हैं। माया और लोभ, यह राग के दो

भाग हैं। माया अर्थात् कपट; लोभ अर्थात् इच्छा। इस माया को भी... आहाहा! ज्ञानी समकिती को, क्षायिक समकिती को भी जरा कर्म के उदय के अनुसार माया भाव, भाव्य हो जाता है। वह चारित्र का दोष है। आहाहा! उसको अपने स्वभाव का विशेष सम्बन्ध करके माया को दबा देना, वह दूसरे प्रकार की स्तुति का भाग है। ऐसा सुना नहीं कभी...

श्रोता : कहीं है नहीं फिर कहाँ से सुनें?

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसी बात! भाग्यशाली कि फिर यहाँ आ गया। बापू! यह मार्ग ऐसा है!

लोभ,... समकिती को भी जरा लोभ आ जाता है। कर्म का अनुसरण करके भाव्य-लोभ को अपना सम्बन्ध करके, उस सम्बन्ध को तोड़ देना, यह दूसरी स्तुति है। आहाहा!

कर्म,.... आठों ही कर्म सम्बन्ध में है न? तो यह कर्म है, उसका लक्ष्य छोड़ देना, यह कर्म को जीता — ऐसा कहा जाता है। कर्म को दबा दिया... आहाहा! ऐसे **नोकर्म, मन, वचन, काय....** स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, यह सब चीज नोकर्म है। देव, शास्त्र, गुरु — यह नोकर्म। आहाहा! उस ओर लक्ष्य जाता था, उतनी स्तुति कम थी। उस ओर का लक्ष्य छोड़कर स्वभाव में विशेष लक्ष्य करना, वह भगवान की-आत्मा की दूसरे नम्बर की स्तुति है। नम्बर दूसरा परन्तु पहले नम्बर की अपेक्षा ऊँची है। आहाहा! समझ में आया? अरे..रे! अकेला आया, अकेला है, अकेला चला जायेगा। आहाहा! यह लाख मनुष्य-कुटुम्ब इकट्ठे हुए हों और यह पीड़ा... आहाहा! ऐसा करे तो चिल्लाहट निकल जाये। बापू! देह छोड़कर अकेला जाना है, यदि ऐसा भान नहीं किया तो पिस जायेगा बापू! आहाहा! नोकर्म तक आया। विशेष आयेगा... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)